नईदुनिया

संपादकीय

सिनेमा पर लगाम या जिम्मेदारी की नई रेखा?

सिनेमा समाज का आईना है, लेकिन आईना केवल चेहरा नहीं दिखाता, वह समाज के भीतर चल रही हलचल को भी सामने लाता है। इसलिए फिल्मों के प्रमाणन से जुड़े नियमों में बदलाव को केवल सेंसर बोर्ड की सख्ती के रूप में देखना उचित नहीं होगा। असली सवाल यह है कि रचनात्मक स्वतंत्रता और सामाजिक जिम्मेदारी के बीच वह सीमा कहाँ खींची जाए, जहाँ दोनों का संतुलन बना रहे।

केंद्र सरकार ने 2024 में सिनेमैटोग्राफ (सर्टिफिकेशन) नियम लागू कर 1983 के नियमों को प्रतिस्थापित किया था। इनमें ऑनलाइन प्रक्रिया, प्रमाणन की समय-सीमा, दिव्यांग दर्शकों के लिए सुगम सुविधाओं तथा यूए श्रेणी में 7+, 13+ और 16+ आयु वर्ग जैसे बदलाव शामिल हैं। अब प्रमाणन संबंधी दिशानिर्देशों को लेकर हिंसा, नशीले पदार्थों, यौन हिंसा, महिलाओं और बच्चों के चित्रण जैसे विषयों पर फिर ध्यान केंद्रित होना इसी व्यापक व्यवस्था का हिस्सा है।

हिंसा को लेकर सावधानी समझ में आती है। अपराध करने की तकनीक को विस्तार से दिखाना या अपराधी जीवन को आकर्षक बनाना केवल मनोरंजन का विषय नहीं रह जाता। इसी तरह महिलाओं के अपमानजनक चित्रण, यौन हिंसा के अत्यधिक दृश्यात्मक प्रदर्शन, बच्चों के साथ क्रूरता और नशे के महिमामंडन पर नियंत्रण का उद्देश्य भी स्पष्ट है। लेकिन यहीं प्रमाणन व्यवस्था के सामने सबसे कठिन परीक्षा शुरू होती है – कहानी की जरूरत और अनावश्यक प्रदर्शन के बीच अंतर कौन और कैसे तय करेगा?

सिनेमा में युद्ध है तो हिंसा होगी, अपराध-कथा है तो अपराध होगा और सामाजिक यथार्थ पर फिल्म है तो असहज करने वाले दृश्य भी आएंगे। यदि हर असुविधाजनक दृश्य को हटाने का रास्ता अपनाया गया तो सिनेमा समाज का आईना कम और सुविधाजनक तस्वीर अधिक बन सकता है।

दूसरी ओर, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर हर दृश्य को उचित ठहराना भी सही नहीं होगा। स्वयं सीबीएफसी की प्रमाणन प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और अनुच्छेद 19(2) में निर्धारित युक्तिसंगत प्रतिबंधों के ढांचे में काम करती है।

धर्म, समुदाय, राष्ट्रीय सुरक्षा और विदेशी संबंधों से जुड़े प्रावधान विशेष रूप से संवेदनशील हैं। ऐसे मामलों में प्रमाणन अधिकारियों को शब्दों से अधिक संदर्भ समझना होगा। किसी दृश्य का उद्देश्य क्या है, वह कथा में क्यों है और उसका प्रभाव क्या हो सकता है – इन प्रश्नों का उत्तर केवल नियमों की सूची से नहीं मिल सकता।

एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि सीबीएफसी का मूल काम फिल्मों को प्रमाणित करना है। वर्तमान व्यवस्था में यू, यूए और आयु-आधारित यूए श्रेणियां दर्शकों को सामग्री के स्वरूप के बारे में जानकारी देने का माध्यम हैं। इसलिए प्रमाणन को केवल 'कट लगाने वाली संस्था' की छवि तक सीमित करना भी व्यवस्था की पूरी भूमिका को नहीं दर्शाता।

नई व्यवस्था की सफलता नियमों की कठोरता से नहीं, उनके पारदर्शी और समान अनुप्रयोग से तय होगी। फिल्मकारों को स्पष्ट मानदंड चाहिए और दर्शकों को जिम्मेदार सिनेमा। सबसे जरूरी यह है कि प्रमाणन प्रक्रिया रचनात्मकता को अनावश्यक रूप से कुंठित न करे और सामाजिक जिम्मेदारी को भी नजरअंदाज न करे। सिनेमा को न तो बेलगाम स्वतंत्रता चाहिए, न बेवजह की कैंची – उसे चाहिए विवेकपूर्ण प्रमाणन।

आजकल

मतदाता सूची की शुद्धता और मतदाता का अधिकार

लोकतंत्र में मतदाता सूची महज नामों की सूची नहीं, बल्कि नागरिक के मतदान अधिकार का आधार है। इसलिए दिल्ली में विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) के दौरान 33 लाख से अधिक मतदाताओं को नोटिस मिलना गंभीरता से देखने की जरूरत है। निर्वाचन आयोग के अनुसार नाम, अभिभावक संबंधी विवरण अथवा पिछली मतदाता सूची से रिकॉर्ड का मिलान न होने जैसी विसंगतियां इसके पीछे कारण हैं। नोटिस मिलना अपने आप में नाम हटाए जाने का अर्थ नहीं है। मतदाता सूची से मृत, स्थानांतरित या दोहरी प्रविष्टियां हटाना जरूरी है, लेकिन किसी वास्तविक मतदाता का नाम केवल तकनीकी त्रुटि के कारण प्रभावित न हो, यह उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। उल्लेखनीय है कि नोटिस पाने वालों में लालकृष्ण आडवाणी, एस. जयशंकर, जगदीप धनखड़ और कई वरिष्ठ अधिकारी भी शामिल हैं। निर्वाचन आयुक्त एस.एस. संधू का नाम भी विसंगति के कारण चिह्नित हुआ।

सवाल यह है कि लाखों मतदाताओं को नोटिस जारी करने वाली प्रक्रिया कितनी पारदर्शी और नागरिकों के लिए कितनी सरल है? प्रत्येक मतदाता को यह स्पष्ट जानकारी मिलनी चाहिए कि उसके रिकॉर्ड में क्या कमी पाई गई और उसे दूर करने के लिए कौन-से दस्तावेज चाहिए। आपत्ति और सुनवाई की प्रक्रिया भी सहज होनी चाहिए। मतदाता सूची की शुद्धता चुनाव की विश्वसनीयता के लिए अनिवार्य है, लेकिन शुद्धता और समावेशन दोनों साथ चलने चाहिए। एक गलत नाम का बने रहना चिंता का विषय है, तो एक वास्तविक मतदाता का नाम छूट जाना भी उतना ही गंभीर है। एसआईआर की सफलता केवल हटाए गए नामों की संख्या से नहीं, बल्कि इस बात से तय होगी कि अंतिम सूची में प्रत्येक पात्र नागरिक का मतदान अधिकार सुरक्षित रहा या नहीं।

अमेरिका में मिड टर्म चुनाव और व्हाइट हाउस का सेमीफाइनल

अमेरिका में राष्ट्रपति का कार्यकाल चार साल का होता है, पर बीच में दो साल बाद एक चुनाव और होता है। उसे मिड टर्म कहते हैं। इसमें पूरे हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स की 435 सीटें, सीनेट की 100 में से 35 सीटें और 36 राज्यों के गवर्नर चुने जाते हैं। यह चुनाव राष्ट्रपति के काम का पहला रिपोर्ट कार्ड होता है। यदि जनता खुश है तो उसी पार्टी को संसद में बनाए रखती है, यदि नाराज है तो विरोधी पार्टी को जिता देती है। इसलिए इसे सेमीफाइनल भी कहा जाता है। 2026 का मिड टर्म इस लिहाज से और खास है, क्योंकि इस समय व्हाइट हाउस में डोनाल्ड ट्रंप दूसरी बार राष्ट्रपति हैं और उनका एजेंडा बहुत आक्रामक है। टैरिफ की लड़ाई, इमिग्रेशन पर सख्ती और यूक्रेन व गाजा पर बदली नीति, इन सबका असर अमेरिकी वोटर पर पड़ रहा है। मिड टर्म तय करेगा कि ट्रंप अगले दो साल राजा की तरह चलेंगे या कांग्रेस में बंध जाएंगे।

पिछले दो साल से हाउस और सीनेट दोनों में रिपब्लिकन का कब्जा है। इसलिए ट्रंप को कानून पास कराने में आसानी रही। पर मिड टर्म में इतिहास कहता है कि सत्ता वाली पार्टी हारती है। 1946 से अब तक लगभग हर मिड टर्म में व्हाइट हाउस वाली पार्टी ने सीटें गंवाई हैं। इस बार हाउस में लड़ाई सबसे तेज है। डेमोक्रेट को केवल पांच सीटें और चाहिए बहुमत के लिए। वे उपनगरीय महिलाओं और युवा वोटरों पर फोकस कर रहे हैं। उनका नारा है कि लोकतंत्र बचाना है और एबॉर्शन के अधिकार को वापस लाना है।

अमेरिका में इस बार सबसे बड़ा मुद्दा महंगाई है। राष्ट्रपति ने चीन, मेक्सिको और यूरोप पर भारी टैरिफ लगा दिया है। इससे अमेरिकी बाजार में सामान महंगा हो गया है। कहा गया था कि टैरिफ से अमेरिकी फैक्ट्री वापस आएगी, पर हकीकत में अभी तक कीमत ही बढ़ी है। ग्रॉसरी से लेकर कार तक सब महंगा है। मध्यम वर्ग का वोटर पूछ रहा है कि क्या यही अमेरिका फर्स्ट है। रिपब्लिकन पार्टी कह रही है कि थोड़ा दर्द सहो, लंबे समय में फायदा होगा और बॉर्डर सुरक्षित हुआ है। डेमोक्रेट कह रहे हैं कि यह टैक्स अमेरिकी जनता पर ही है और इससे नौकरियां नहीं बढ़ रही हैं। यही बहस इस मिड टर्म का केंद्र बन गई है। पेट्रोल के दाम, ब्याज दर और हेल्थ इंश्योरेंस का प्रीमियम, इन तीन चीजों पर वोटर फैसला करेगा।

पिछले दो साल से हाउस और सीनेट दोनों में रिपब्लिकन का कब्जा है। इसलिए ट्रंप को कानून पास कराने में आसानी रही। पर मिड टर्म में इतिहास कहता है कि सत्ता वाली पार्टी हारती है। 1946 से अब तक लगभग हर मिड टर्म में व्हाइट हाउस वाली पार्टी ने सीटें गंवाई हैं। इस बार हाउस में लड़ाई सबसे तेज है। डेमोक्रेट को केवल पांच सीटें और चाहिए बहुमत के लिए। वे उपनगरीय महिलाओं और युवा वोटरों पर फोकस कर रहे हैं। उनका नारा है कि लोकतंत्र बचाना है और एबॉर्शन के अधिकार को वापस लाना है। सीनेट में नक्शा रिपब्लिकन के लिए आसान है, क्योंकि जिन 35 सीटों पर चुनाव है, उनमें से अधिकांश पहले से ही रिपब्लिकन राज्यों में हैं। पर यदि डेमोक्रेट दो या तीन सीट भी पलट देते हैं तो सीनेट में बराबरी आ जाएगी और उपराष्ट्रपति के वोट से फैसला होगा।

अमेरिका में बसा भारतीय समुदाय अब बड़ा वोट बैंक बन गया है। टेक्सास, कैलिफोर्निया और न्यू जर्सी में भारतीय वोटर निर्णायक हैं। इस बार एच-1बी वीजा पर सख्ती और छात्रों पर निगरानी से भारतीय समुदाय नाराज है। डेमोक्रेट इसे मुद्दा बना रहे हैं कि प्रतिभा को रोका जा रहा है। रिपब्लिकन कह रहे हैं कि अमेरिकी नौकरी पहले है। इसका असर स्विंग जिलों में दिख सकता है।

दुनिया के लिए यह मिड टर्म बहुत अहम है। यदि रिपब्लिकन जीतते हैं तो ट्रंप की टैरिफ नीति और मजबूत होगी। भारत जैसे देशों पर भी दबाव बढ़ेगा। अमेरिका से ज्यादा खरीदो। यदि डेमोक्रेट हाउस जीत लेते हैं तो ट्रंप की विदेश नीति पर ब्रेक लगेगा। कांग्रेस यूक्रेन को मदद के लिए फिर दबाव बनाएगी और टैरिफ पर सुनवाई शुरू होगी।

2026 के चुनाव में प्रचार का तरीका भी बदल गया है। अब टीवी विज्ञापन से ज्यादा टिकटॉक, रील और एआई वीडियो चल रहे हैं। दोनों पार्टियां एआई से वोटर का चेहरा पहचानकर उसे उसी की भाषा में संदेश भेज रही हैं। कहीं डीपफेक का डर भी है कि किसी उम्मीदवार का नकली वीडियो वायरल हो जाए। इसलिए इस बार चुनाव आयोग ने एआई लेबलिंग अनिवार्य की है।

युवा वोटर अब परंपरागत रैली में नहीं आता। वह इंस्टाग्राम पर सवाल पूछता है कि क्लाइमेट पर तुम्हारी नीति क्या है, कि स्टूडेंट लोन माफ होगा या नहीं। जो पार्टी इस भाषा को समझेगी, वही जीतेगी।

मिड टर्म का परिणाम चाहे जो भी हो, एक बात तय है कि अमेरिका और ज्यादा बंट जाएगा। शहर और गांव के बीच, युवा और बुजुर्ग के बीच, टेक कंपनियों और मजदूरों के बीच। यह बंटवारा ही अमेरिकी राजनीति की नई हकीकत है। भारत के लिए इसमें सबक है। अमेरिका में सत्ता में बैठी पार्टी भी हर दो साल में जनता के सामने जाती है और जनता उसे सजा या इनाम देती है। यह जवाबदेही ही लोकतंत्र को जिंदा रखती है।

2026 का मिड टर्म केवल अमेरिका का चुनाव नहीं है। यह तय करेगा कि दुनिया में संरक्षणवाद बढ़ेगा या उदारवाद लौटेगा, कि डॉलर महंगा रहेगा या सस्ता होगा और कि आने वाले राष्ट्रपति चुनाव में ट्रंप तीसरी बार लड़ने की बात कितनी गंभीरता से ले पाएंगे। व्हाइट हाउस का रास्ता इस बार वाशिंगटन से नहीं, ओहायो, पेंसिल्वेनिया और एरिजोना के उन छोटे कस्बों से होकर गुजरेगा, जहां वोटर अभी भी तय नहीं कर पाया है कि जेब बड़ी है या नारा बड़ा है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

डॉलर की बाढ़ और रुपये की परीक्षा

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए विदेशी मुद्रा का मजबूत भंडार जितनी राहत देता है, कभी-कभी वही बड़ी मात्रा में आने वाला डॉलर बैंकिंग व्यवस्था के लिए नई चुनौती भी खड़ी कर देता है। इन दिनों भारतीय रिजर्व बैंक के सामने कुछ ऐसा ही संतुलन साधने का सवाल है। एक ओर वैश्विक परिस्थितियों, महंगे कच्चे तेल और अमेरिकी ब्याज दरों के दबाव में रुपया कमजोर हो रहा है, दूसरी ओर विदेशी मुद्रा की आवक से बैंकिंग प्रणाली में रुपये की तरलता बढ़ रही है। रिजर्व बैंक डॉलर-रुपया स्वैप और अन्य उपायों के जरिए इसी असंतुलन को संभालने की कोशिश कर रहा है। सितंबर में रिजर्व बैंक ने विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप के साथ डॉलर-रुपया स्वैप का इस्तेमाल अतिरिक्त रुपये की तरलता सोखने के लिए किया है।

सामान्य पाठक के लिए यह सवाल स्वाभाविक है कि आखिर डॉलर-रुपया स्वैप होता क्या है? सरल भाषा में समझें तो यह मुद्रा के तत्काल लेन-देन और भविष्य में उसे वापस करने की व्यवस्था है। रिजर्व बैंक जब डॉलर बेचकर रुपये लेता है और भविष्य में तय शर्तों पर डॉलर वापस करने का सौदा करता है, तो बाजार से रुपये की अतिरिक्त तरलता कुछ समय के लिए बाहर चली जाती है। इससे बैंकिंग प्रणाली में नकदी की मात्रा को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। यह केवल रुपये की कीमत बचाने का औजार नहीं, बल्कि मौद्रिक तरलता को संतुलित करने का माध्यम भी है।

आज की परिस्थिति इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत की विदेशी मुद्रा स्थिति मजबूत होने के बावजूद रुपये पर दबाव बना हुआ है। 17 सितंबर को रुपया 96 रुपये प्रति डॉलर के स्तर के पार चला गया था, जिसके बाद रिजर्व बैंक के संभावित हस्तक्षेप की चर्चा हुई। वैश्विक तेल कीमतों में तेजी और अमेरिकी मौद्रिक नीति से जुड़ी अनिश्चितता रुपये के लिए दबाव पैदा कर रही है।

दूसरी तरफ, हाल के महीनों में विदेशी मुद्रा जुटाने की विशेष व्यवस्था से बैंकों के पास बड़ी मात्रा में डॉलर आए हैं। अगस्त के अंत

तक इस योजना के तहत 65 अरब डॉलर से अधिक जुटाए जाने की सूचना थी। इतनी बड़ी डॉलर आवक को रुपये में बदलने पर घरेलू वित्तीय प्रणाली में तरलता बढ़ती है। यही कारण है कि रिजर्व बैंक को अब केवल रुपये की विनिमय दर नहीं, बल्कि बाजार में मौजूद रुपये की मात्रा पर भी नजर रखनी पड़ रही है।

यहीं से भारतीय अर्थव्यवस्था की असली चुनौती सामने आती है। रुपये को बहुत तेजी से गिरने से रोकना जरूरी है, लेकिन बाजार में जरूरत से ज्यादा नकदी भी महंगाई और वित्तीय असंतुलन को बढ़ा सकती है। रिजर्व बैंक पहले ही सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री के जरिए अतिरिक्त तरलता सोखने की दिशा में कदम उठा चुका है। सितंबर में 500 अरब रुपये की बॉन्ड बिक्री की गई और आगे भी तरलता प्रबंधन के उपाय किए जा रहे हैं।

इस पूरे घटनाक्रम को केवल 'रुपया बचाने की कवायद' मानना अधूरा होगा। असल में रिजर्व बैंक एक साथ कई रस्सियों को थामे हुए है – रुपये की स्थिरता, महंगाई, बैंकिंग प्रणाली की तरलता, विदेशी पूंजी के प्रवाह और तेल की कीमतें। किसी एक मोर्चे पर उठाया गया कदम दूसरे मोर्चे पर असर डाल सकता है।

आम भारतीय के लिए इसका महत्व सीधा है। कमजोर रुपया आयातित कच्चे तेल, इलेक्ट्रॉनिक सामान, मशीनरी और अन्य आयातित वस्तुओं की लागत बढ़ा सकता है। दूसरी ओर, निर्यातकों के लिए कमजोर रुपया कुछ परिस्थितियों में प्रतिस्पर्धात्मक लाभ दे सकता है।

इसलिए रुपये की मजबूती या कमजोरी को अपने आप में सफलता या असफलता का पैमाना मानना उचित नहीं होगा। विदेशी मुद्रा भंडार की ताकत तभी अर्थपूर्ण है, जब उसका इस्तेमाल बाजार में अनावश्यक उथल-पुथल रोकने और आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए विवेकपूर्ण ढंग से किया जाए। डॉलर की हर आवक खुशखबरी नहीं और रुपये की हर गिरावट संकट नहीं। असली कसौटी यह है कि भारतीय अर्थव्यवस्था इन दोनों के बीच संतुलन कितनी समझदारी से कायम रखती है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

टैरिफ की राजनीति और भारत के सामने कूटनीति की परीक्षा

भारत-अमेरिका संबंधों में पिछले कुछ महीनों की घटनाएं यह याद दिलाती हैं कि अंतरराष्ट्रीय रिश्ते स्थायी मित्रता से अधिक बदलते आर्थिक और सामरिक हितों पर टिके होते हैं। अमेरिका की नई टैरिफ नीति और रूस से भारत की तेल खरीद को लेकर बढ़ते दबाव ने दोनों देशों के रिश्तों के सामने एक कठिन परिस्थिति खड़ी कर दी है। सितंबर में अमेरिकी कांग्रेस से पारित कानून राष्ट्रपति को रूस से तेल खरीदने वाले देशों पर 100 प्रतिशत तक अतिरिक्त शुल्क लगाने का अधिकार देता है। भारत ने स्पष्ट किया है कि वह अपनी व्यापारिक और आर्थिक हितों की रक्षा के लिए आवश्यक कदम उठाएगा। इस विवाद की जड़ केवल टैरिफ नहीं है। भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा तेल आयातक है और रूसी कच्चा तेल लंबे समय से उसकी ऊर्जा आपूर्ति का महत्वपूर्ण हिस्सा बना हुआ है। भारत का तर्क है कि उसकी विशाल अर्थव्यवस्था और आबादी के लिए सुरक्षित, भरोसेमंद और प्रतिस्पर्धी कीमत पर ऊर्जा उपलब्ध होना आवश्यक है। दूसरी ओर, वाशिंगटन रूस पर आर्थिक दबाव बढ़ाने के लिए उसके प्रमुख तेल खरीदारों पर दबाव डाल रहा है। विडंबना यह है कि इसी वर्ष फरवरी में भारत और अमेरिका ने व्यापार समझौते की दिशा में एक अंतरिम ढांचा घोषित किया था। इसमें भारत द्वारा अमेरिकी उत्पादों पर शुल्क घटाने और अगले पांच वर्षों में 500 अरब डॉलर के अमेरिकी ऊर्जा, विमान, प्रौद्योगिकी और अन्य उत्पाद खरीदने की योजना का उल्लेख था। अमेरिका ने भी भारतीय वस्तुओं पर कुछ टैरिफ कम करने का ढांचा प्रस्तुत किया था।

अब परिस्थितियां फिर बदल गई हैं। जुलाई में अमेरिकी प्रशासन ने भारतीय आयात पर अतिरिक्त 10 प्रतिशत शुल्क लागू किया था। सितंबर में रूस से तेल खरीदने वाले देशों के खिलाफ नए संभावित शुल्क ने अनिश्चितता और बढ़ा दी है। इससे भारत-अमेरिका व्यापार वार्ता पर भी असर पड़ सकता है।

भारत के सामने इसलिए केवल अमेरिका को जवाब देने का प्रश्न नहीं है। उसे ऊर्जा सुरक्षा, निर्यात बाजार, घरेलू कीमतों और व्यापक विदेश नीति के बीच संतुलन बनाना है। रूस से सस्ता तेल खरीदने का आर्थिक लाभ है, लेकिन उसके कारण अमेरिकी बाजार पर अतिरिक्त शुल्क का खतरा भी है। दूसरी ओर, अमेरिकी दबाव में तेल खरीद की दिशा अचानक बदलने से घरेलू ऊर्जा लागत प्रभावित हो सकती है।

ऐसे समय में नारे नहीं, बातचीत और विकल्पों की जरूरत है। भारत को अमेरिका के साथ संवाद बनाए रखते हुए यूरोप, रूस, पश्चिम एशिया और अन्य ऊर्जा एवं व्यापार साझेदारों के साथ अपने विकल्प भी मजबूत करने होंगे। किसी एक देश पर अत्यधिक निर्भरता चाहे व्यापार की हो या ऊर्जा की, रणनीतिक जोखिम बन सकती है। वर्तमान संकट भारत के लिए यही संदेश लेकर आया है कि आत्मनिर्भरता का अर्थ दुनिया से दूरी नहीं, बल्कि विकल्पों की पर्याप्त गुंजाइश तैयार करना है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

सड़क पर गौवंश और मौत का साया, अब सींग पर चिप से बचेगी जान

तीन सौ हादसे, सौ मौतें और एक चेतावनी

मध्यप्रदेश की सड़कों पर एक अजीब-सा सन्नाटा पसरा है। दिन में गाय बैठी है और रात में मौत दौड़ती है। शहर हो या गांव, हाईवे हो या गली, हर जगह गोवंश सड़क पर घूमता दिखता है। कुछ चिन्हित क्षेत्रों में तीन सैकड़ा से ज्यादा दुर्घटनाएं हो चुकी हैं और सौ से अधिक आम आदमी की जान जा चुकी है। यह आंकड़ा केवल पुलिस डायरी का नहीं है, यह उस लापरवाही का आंकड़ा है, जो सालों से पाली गई है। गाय को माता कहा जाता है, पर सड़क पर वही माता बेसहारा है। दूध देना बंद करती है तो मालिक छोड़ देता है और वही गाय फिर सड़क पर आकर किसी बाइक सवार की जान ले लेती है या खुद ट्रक के नीचे कुचल जाती है। दोनों तरफ नुकसान है, एक तरफ मानवता और दूसरी तरफ गोवंश।

माइक्रो चिप और रिफ्लेक्टर की नई योजना क्या है-इसी दर्द को रोकने के लिए अब प्रदेश सरकार एक नई योजना पर काम कर रही है। योजना है मवेशियों को व्यवस्थित करने की, उनके सींगों पर माइक्रो चिप और रिफ्लेक्टर लगाने की। माइक्रो चिप का अर्थ है पहचान। हर गोवंश के सींग पर या कान पर एक छोटी-सी चिप लगाई जाएगी। उस चिप में मालिक का नाम, पता और गांव का डेटा होगा। यदि गाय सड़क पर मिलती है तो स्कैनर से तुरंत पता चल जाएगा कि इसका मालिक कौन है। कई बार मालिक जानबूझकर गाय छोड़ देता है, ताकि चारा-पानी का खर्च बचे। अब चिप से वह पकड़ा जाएगा और उस पर जुर्माना लगेगा।

रिफ्लेक्टर का अर्थ है सुरक्षा। रात में हेडलाइट की रोशनी में गाय दिखती नहीं है। काली गाय तो बिल्कुल अंधेरे में घुल जाती है। यदि सींग पर रेडियम रिफ्लेक्टर लगा होगा तो सौ मीटर दूर से ही ड्राइवर को चमक दिखेगी और वह ब्रेक लगा सकेगा। यह छोटा-सा उपाय सौ जानें बचा सकता है। जैसे साइकिल पर रिफ्लेक्टर जान बचाता है, वैसे ही गोवंश पर रिफ्लेक्टर भी जान बचाएगा।

शहरों में सार्वजनिक स्थलों पर गोवंश क्यों बड़ी समस्या है? शहरों में तो समस्या और विकराल है। बस स्टैंड के पास गायें कचरा खा रही हैं, सब्जी मंडी में बैल घूम रहे हैं, अस्पताल के गेट पर मवेशी बैठे हैं। सार्वजनिक स्थलों पर गोबर और गंदगी और उसी के पास से गुजरती तेज रफ्तार गाड़ियां। नगर निगम गाड़ी भेजता है, गायों को पकड़कर कांजी हाउस ले जाता है। मालिक पैसे देकर छुड़ा लाता है और अगले दिन फिर वही गाय उसी चौक पर। यह आंख-मिचौली रोज चलती है। इससे न गोवंश का भला हो रहा है, न शहर का। जरूरत है स्थायी समाधान की।

गोवंश को सड़क से हटाकर गौशाला तक ले जाना ही उपाय नहीं है। गौशाला भी तो भरी पड़ी हैं, चारे के बिना गायें वहां भी मर रही हैं। इसलिए चिप और रिफ्लेक्टर के साथ-साथ गौशालाओं को आत्मनिर्भर बनाना भी जरूरी है। जहां गोबर से गैस बने, गोमूत्र से दवा बने और गौशाला खुद कमा सके।

दुर्घटना केवल एक्सीडेंट नहीं, सिस्टम की विफलता है। तीन सौ से ज्यादा दुर्घटनाएं बताती हैं कि यह इत्तेफाक नहीं है। यह सिस्टम की विफलता है। हमने सड़कें चौड़ी कर दीं, पर गायों के लिए कोई कॉरिडोर नहीं बनाया। हमने स्ट्रीट लाइट लगा दीं, पर रिफ्लेक्टर नहीं लगाया। हमने हेलमेट अनिवार्य कर दिया, पर गोवंश को सड़क से हटाना अनिवार्य नहीं किया। रात में जब बाइक सवार सत्तर की स्पीड में होता है और अचानक बीच सड़क पर गाय आ जाती है तो हेलमेट भी जान नहीं बचाता, क्योंकि टक्कर सीधी होती है और गाय का वजन तीन सौ किलो से ज्यादा होता है। ऐसे में बाइक सवार उछलकर दूर गिरता है और सिर में चोट से मौत हो जाती है। सौ से अधिक मौतें इसी तरह हुई हैं।

गोवंश सड़क पर क्यों आता है? क्योंकि मालिक उसे छोड़ देता है और समाज उसे पालने को तैयार नहीं है। पुराने समय में हर गांव में गोचर भूमि होती थी। गायें वहीं चरती थीं। अब गोचर पर अतिक्रमण हो गया है, प्लॉट कट गए हैं, तो गाय कहां जाए? वह सड़क पर ही आएगी। इसलिए योजना केवल चिप लगाने की नहीं होनी चाहिए, योजना गोचर को बचाने की भी होनी चाहिए। हर पंचायत में एक व्यवस्थित चारागाह हो, हर शहर में एक बड़ी गौशाला हो, जहां बेसहारा गोवंश को रखा जाए और उस गौशाला को सरकार नहीं, समाज चलाए। यदि मालिक अपनी गाय को छोड़ता है तो उस पर केवल जुर्माना नहीं, उसे गौशाला में एक महीने सेवा भी करनी चाहिए। तभी उसे समझ आएगा कि गाय पालना कितना कठिन है।

माइक्रो चिप तकनीक है, रिफ्लेक्टर सुरक्षा है, पर इन दोनों के पीछे करुणा होनी चाहिए। गाय को केवल समस्या मत समझिए। वह हमारी अर्थव्यवस्था का हिस्सा है। उसके गोबर से खेत उपजाऊ होता है, उसके होने से गांव में समृद्धि आती है। जब हम उसके सींग पर चिप लगाएं तो इस भाव से लगाएं कि हम उसकी रक्षा कर रहे हैं, न कि केवल अपनी जान बचा रहे हैं। जब हम रिफ्लेक्टर लगाएं तो इस भाव से लगाएं कि रात में कोई ट्रक उसे कुचल न दे।

मध्यप्रदेश यदि इस योजना को ईमानदारी से लागू करता है तो यह देश के लिए मॉडल बन सकता है। तीन सौ हादसे रुक सकते हैं, सौ जानें बच सकती हैं और गोवंश भी सुरक्षित हो सकता है। सड़कें इंसानों के लिए हैं, पर धरती सबकी है। यदि इंसान और गोवंश दोनों को साथ चलना है तो तकनीक और करुणा को भी साथ चलना होगा। सींग पर लगा छोटा-सा रिफ्लेक्टर इसी साथ चलने की रोशनी है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)